ना जाने क्यों?

ना जाने क्यों?
धरती का अक्ष
मेरे घर को कुछ डिग्री झुका देता है।

ना जाने क्यों?
मेरे हिस्से का चाँद
किसी और की छत से दिखाई देता है।

ना जाने क्यों?
सातों घोड़े सूरज के
मेरे निवास की खिड़की में हिनहिनाते नहीं।

ना जाने क्यों?
ब्रह्मांड के चेहरे की झुर्रियां
मेरे मकां की नींव को कंपकंपाने लगती हैं।

ना जाने क्यों?
अनगिनत सितारों की अपरिमित ऊर्जा
मेरे छप्पर पर बिजली बन कर गिरती है।

ना जाने क्यों?
अनन्तता में स्थित तिमिर
मेरे गृह-प्रकाश को लील लेता है।

ना जाने क्यों फिर भी!
मानस में जलता उम्मीद का दीपक
मेरे घरौंदे में इक लौ पैदा कर देता है।
ना जाने क्यों...
सब-कुछ मिलकर भी - यह दीपक बुझा नहीं पाए।

डॉ. चंद्रेश क़ुमार छतलानी

काश!

लिख पाता मैं भी कोई कविता।
कह लेता इक कागज़ से कुछ भाव भरे शब्द,
उड़ेंल देता कम से कम आँसू की एक बूंद तो।
गीले कागज़ को चार तहों में कर -
रख लेता अपनी शर्ट की जेब में।

लेकिन,
कौन लिख पाया है कविता आज तक?
जो बुद्ध बना वो कवि नहीं
और कवि! कभी बुद्ध नहीं बन पाया।
कटे सर वाले सिपाही -
जली हुई दुल्हनें -
कुंठित लड़ते हुए लोग -
या अकेली माँ -
ऐसा ही तो कह पाता है कोई कवि!

ओ भावुक कवि!
जो तुमने लिखा उसे खुदने पढ़ा कभी?
हाँ! सुनाया ज़रूर है।

सोचो श्रोता!
क्या तुमने सुनी कभी बुद्धत्व भरी कविता?
जो कविता में हो बुद्धत्व,
तब मैं कविता क्यों लिखूं?
तुम भी क्यों?

3 प 46, प्रभात नगर, सेक्टर-5, हिरण मगरी, उदयपुर (राजस्थान) – 313 002

ISSN:2583-8849